Printed at Raj Art Press, Deputy Ganj, DELHI-6.

भारतीय जन संघ

अष्टम वार्षिक अधिवेशन

तथा

कार्य समिति द्वारा पारित प्रस्ताव

जनवरी २३, २४, २५, १९६०

नागपुर

राजनीतिक परिस्थिति

भारतीय जनसंघ ने राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्रीय पद्धति तथा शासन की शुचिता और दक्षता को देश की राजनीतिक प्रगति का आधार माना है। बिना इन तीनों के देश की राजनीति न तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का संरक्षण कर सकती है और न प्रत्येक जन को उसके विकास का पूर्ण अवसर देते हुये उसका हित सम्पादन कर सकती है। जबकि पिछले कुछ वर्षों में एशिया के अनेक देशों में संसदीय लोकतन्त्र समाप्त होकर अधिनायकवादी शासन प्रस्थापित हो चुके हैं, भारत इस बात का गर्व कर सकता है, कि उसने वैधानिक पद्धति और संसदीय प्रणाली पर अडिग रहकर अपनी मूलभूत लोकतन्त्रीय प्रवृत्ति का परिचय दिया है। किन्तु यह मानकर चलना कि भारत में लोकतन्त्र का भविष्य सुरक्षित है और उसको समाप्त करने के लिये यहां कोई शक्तियां क्रियाशील नहीं है अपने को धोखे में डालना होगा।

इस दृष्टि से साम्यवादी दल विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि यह सिद्धान्ततः लोकतन्त्रीय पद्धति में विश्वास नहीं करता। नीति के रूपमें उसने अमृतसर-प्रस्ताव द्वारा लोकतन्त्रीय संसदीय प्रणाली पर विश्वास अवश्य प्रकट किया, और देश के अनेक लोग भुलावे में भी आ गये किन्तु केरल में सत्तारूढ़ होते ही लोकतन्त्र की जड़ पर कुठाराघात करने का षड्यन्त्र जो उन्होंने किया, वह उनके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है। यह हर्ष का विषय है कि जनता ने उनके इस षड्यन्त्र के विरुद्ध सफल आन्दोलन करके लोकतन्त्र की रक्षा की। जनसंघ आशा करता है कि आने वाले चुनावों में केरल के मतदाता कम्युनिस्ट पार्टी के और उनके द्वारा समर्थित उम्मीदवारों के विरुद्ध मतदान करके लोकतन्त्र का मूलोच्छेदन करने वाली इन शक्तियों को क्षीण करेंगे।

सत्तारूढ़ दल ने यद्यपि रूपरंग से लोकतन्त्र को स्वीकार किया है किन्तु व्यवहार में वह अधिकाधिक अलोकतन्त्रीय होता जा रहा है और जिन नीतियों और कार्यक्रमों को उसने अपनाया है उनसे निश्चित ही लोकतन्त्र भारी संकट में पड़ जायगा। विरोधी दलों के प्रति सर्वथा उपेक्षा ही नहीं तो असहिष्णुता का व्यवहार किया जाता है। जहां जहां स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में कांग्रेस के अतिरिक्त दूसरे लोग बहुमत में चुनकर आये हैं वहां सरकार उनको न्याय्य सहायता देना तो दूर उलटे उनके मार्ग में बाधायें

उपस्थित करती है और उन्हें भंग करने का हर बहाना ढूंढा जाता है। समाजवाद के नाम पर राष्ट्रीयकरण तथा सहकारी खेती के जो कार्यक्रम लिये जा रहे हैं उनसे समाज के अधिकाधिक अंगों को राज्य के नियन्त्रण में लाने का प्रयास किया जा रहा है। शिक्षा का क्षेत्र भी राज्य के सर्वग्राही हस्तक्षेप से नहीं बचा है। विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता समाप्त होती जा रही है। श्रमिक कानून भी ऐसे बनाये जा रहे हैं कि जिससे इन्टुक को छोड़कर दूसरे श्रम संगठन का चलाना ही सम्भव न हो। जनसुरक्षा के नाम पर कानून बनाकर नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को अधिकाधिक सीमित कर दिया गया है। कर्मचारियों को सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने की सुविधाएं भी कम की जा रही हैं। निश्चित ही यह सब देश में एक दलीय सत्ता बनाये रखने के उपाय हैं।

भावात्मक रूप से लोकतन्त्र में जनता की निष्ठा बलवती करने के लिये यह भी आवश्यक है कि शासन के द्वारा जनहित का सम्पादन हो सके। कांग्रेस शासन की पिछले १२ वर्षों की असफलताओं ने आज देश के मन में लोकतन्त्रीय पद्धति की राष्ट्रीय विकास के लिये उपयुक्तता और क्षमता के सम्बन्ध में ही शंका उत्पन्न कर दी है। फलतः आज एक ओर तो सर्वदलीय या निर्दलीय सरकारों के सुझाव दिये जाते दूसरी ओर विभिन्न देशों की अधिनायकवादी सरकारों के गुणानुवाद किये जाते हैं।

कांग्रेस की असफलताओं, उसके भ्रष्टाचार और आन्तरिक गुटबाजी का समी-करण प्रजातन्त्र के साथ करना भूल होगी। यह तो दुःख का विषय है कि कांग्रेस ने आपस की गुटबाजी और स्वार्थ-लिप्सा के कारण सम्पूर्ण देश की राजनीति को विषाक्त बना दिया है। कांग्रेस से निकलकर जो दल बने हैं वे भी किसी सैद्धान्तिक आधार पर नहीं, अपितु इसी गुटबाजी से उत्पन्न विघटन के परिणामस्वरूप स्थापित हुए हैं। स्वाभाविक ही ये दल भारतीय राजनीति का सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण करने के स्थान पर उसमें अधिकाधिक अव्यवस्था और जनता में भ्रम ही उत्पन्न करते हैं। अवसरवाद एवं सिद्धान्तहीन गठबन्धन के लिये ये सदैव तत्पर रहते हैं। देश के पृथकता-वादी तत्व कांग्रेस तथा इन दलों के सहारे सौदेबाजी करके अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। विभिन्न दल समय समय पर इनसे समझौता करके देश के अन्दर साम्प्रदायिकता को बढ़ाये रखने और बढ़ावा देने का ही पाप कर रहे हैं। फलतः आज पंजाबी सूबे की माँग से सिखिस्तान, स्वतन्त्र द्रविडस्तान, झारखण्ड और पृथक पर्वतीय-क्षेत्रीय राज्य तथा नागा राज्यों की माँगों को इनके द्वारा पोषण मिल रहा है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता भिन्न-भिन्न रूपों में फिर सिर उठा रही है। केरल में मुस्लिम लीग के साथ कांग्रेस का चुनाव गठबन्धन और भू. पू. कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमती इन्दिरा

गांधी के आदेश पर अल्पसंख्यकों की शिकायतों का विचार करने के लिये और उनको दी जाने वाली सुविधाओं की सिफारिश करने के लिये एक समिति की नियुक्ति ऐसे राष्ट्रघाती प्रयत्न हैं, जो इन तथाकथित अल्पसंख्यकों को भारत के राष्ट्र जीवन के साथ कभी एकात्म नहीं होने देंगे।

शासन में व्यापक पैमाने पर फैला हुआ भ्रष्टाचार आज एक महारोग का रूप धारण कर चुका है। बिना उसको दूर किये हमारे राष्ट्र विकास की योजनाओं को पूर्ण करना तो दूर, शासक अपने प्राथमिक कर्तव्यों का निर्वाह भी ठीक प्रकार से नहीं कर सकता है। इसे दूर करने के लिए क्रान्तिकारी पग उठाना आवश्यक है। भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच के लिए उच्चाधिकार-युक्त अधिकरण की नियुक्ति का सुझाव सर्वथा सामयिक और समीचीन है। प्रधान मन्त्री ने उसे अमान्य कर भ्रष्ट शासकों को अनीति की राह पर चलते रहने की खुली छूट दे दी है।

भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए जहाँ एक ओर जाति, पंथ, भाषा, और क्षेत्रीय आधार पर काम करने वाले दल संकट पैदा कर रहे हैं वहाँ दूसरी ओर कम्यु-निस्ट पार्टी भारत-बाह्य निष्ठा उत्पन्न कर राष्ट्रीय जीवन को मूलतः समाप्त करने का प्रयास कर रही है। तिब्बत और भारत पर चीन के आक्रमण की घटनाओं ने इस दल के राष्ट्र-विरोधी स्वरूप को एक बार पुनः जनता के सामने ला दिया है। भारत-चीन के प्रश्न पर भारत की प्रबल जनभावनाओं के कारण इस दल ने शब्दों का मायाजाल फैला कर अपनी प्रवृत्तियों को छिपाने का विफल प्रयास किया है। आव-श्यक है कि जनता उनके सही रूप को समझ कर उन्हें चीनी पंचमांगियों के रूप में, विध्वंसक और राष्ट्रविरोधी कार्य न करने दे।

भारतीय जनसंघ का मत है कि स्वतन्त्र भारत की राजनीति भारत की प्रकृति और परम्परा के आधार पर चलकर ही देश की एकता, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र का संरक्षण कर जनता को सुख और समृद्धि प्राप्त करा सकेगी। राजनीति का आधार कांग्रेस की एकांगी नीति के प्रति विरोध अथवा क्षणिक प्रतिक्रिया नहीं हो सकती। इस प्रकार बने हुये दल जो पिछले वर्षों में अनेक और अनेक बार उत्पन्न हुये हैं अधिक दिन चल नहीं सकते और न जन हित ही कर सकते हैं। राष्ट्रीय एकता एवं स्व-तन्त्रता तथा लोकतन्त्र के लिए जो संकट उपस्थित हो गया है उसका सामना करना होगा। आज जनता को भ्रम में डालकर चाहे अनेक लोग अपने कुत्सित इरादों को पूरा कर रहे होंगे किन्तु उसकी इन दोनों जीवन-मूल्यों में गहरी निष्ठा है। जब कभी अवसर आया है इस निष्ठा का उसने परिचय दिया है। पिछले बारह वर्षों में काश्मीर और गोवा के प्रश्न पर सम्पूर्ण भारत की जनता ने समान भावनाओं का प्रदर्शन किया और आज भी चीन द्वारा देश की सीमाओं के अतिक्रमण को

डट कर मुकाबला करने के लिए काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत सन्नद्ध है। लोकतन्त्र के अपने प्रेम का परिचय उसने विभिन्न चुनावों में भावात्मक रूप से दिया है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे आसन्न संकट का ज्ञान कराया जाय, उसका योग्य मार्ग-दर्शन किया जाय तथा उसे संघटित कर संकट का सामना करने तथा भावात्मक रूप से राष्ट्र-निर्माण की योजनाओं में स्वेच्छा से जुट जाने के लिए सन्नद्ध किया जाय।

जनता की इन भावनाओं के आधार पर देश की राजनीति के ध्रुवीकरण से ही वह सामर्थ्य उत्पन्न हो सकता है जो देश में बढ़ती हुई राजनीतिक अनास्था को दूर कर सके। शासन की एकांश नीति के प्रति विरोध या क्षणिक प्रतिक्रिया हमें बहुत दूर नहीं ले जायगी। क्षेत्रीय या वर्गीय आधार पर हितों के संरक्षण के लिये किया गया विरोध मात्र राष्ट्रीय निष्ठाओं को और भी धक्का लगायेगा

भारतीय जनसंघ पिछले आठ वर्षों से राष्ट्र की इन मान्यताओं के आधार पर जनता का राजनीतिक संगठन कर रहा है। उसे बहुत अंश में सफलता भी मिली है। जनसंघ इन जीवन मूल्यों में निष्ठा रखने वाली सभी शक्तियों का आवाहन करता है कि वे इस महान प्रयत्न में सहभागी होकर देश को आज की विपन्न अवस्था से निकाल कर स्वतन्त्र, समृद्ध और सुखी बनाने का पुण्य काम करें।

जम्मू-काश्मीर

जम्मू-काश्मीर में प्रवेश के लिये अनुमति-पत्र की समाप्ति तथा भारत के सर्वोच्च न्यायालय एवं निर्वाचन-आयोग के अधिकार-क्षेत्र का आंशिक रूप में ही क्यों न हो, लागू किया जाना सही दिशा में एक पग है। किन्तु जनसंघ का यह निश्चित मत है कि जब तक भारतीय संविधान के अस्थायी अनुच्छेद ३७० के अन्तर्गत जम्मू-काश्मीर राज्य की विशेष स्थिति को समाप्त नहीं किया जाता तब तक वहां न तो सामान्य परिस्थिति उत्पन्न होगी और न राष्ट्र का एकीकरण ही पूर्ण होगा। भारतीय संविधान, जिसकी रचना में काश्मीर के प्रतिनिधियों का भी हाथ था, की परिधि के बाहर जम्मू-काश्मीर को रखने का कोई समुचित आधार अथवा तर्क-संगत कारण नहीं था। राज्य को विशेष स्थिति प्रदान करने से लेकर अब तक भीतर तथा बाहर जो घटनायें हुई हैं उनसे संविधान को कुण्ठित करने के प्रतिगामी पग की गलती स्पष्ट हो गई है।

इस स्थिति का लाभ उठाकर सत्तारूढ़ गुट, जिसको उसमें निहित स्वार्थ है, स्थायी निवास के नाम पर एक पृथक नागरिकता को बनाये हुये है जिसके अन्तर्गत भारतीय नागरिक वहां संविधान द्वारा स्वीकृत मूलभूत साम्पत्तिक तथा राजनीतिक

अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकते। इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी पंजाब तथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रदेश से आये हुए बहुत से विस्थापित जो काश्मीर में बस गए हैं, और हजारों भारतीय नागरिक जो सामान्य काम-काज के लिए वहां गए हुए हैं, अपने ही देश में नागरिकताविहीन बन गए हैं।

लोक सभा में जम्मू-काश्मीर के प्रतिनिधियों का प्रत्यक्ष निर्वाचन न होने के कारण, संसद की कार्यवाही में वहां की स्थिति तथा जनमत का सही प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। राज्य के प्रमुख सदर-ए-रियासत का विधान सभा द्वारा निर्वाचन, उन्हें संविधान द्वारा अन्य राज्यों के राज्यपालों के लिए निर्धारित दायित्व का पालन नहीं करने देता।

इसके फलस्वरूप जम्मू-काश्मीर की जनता यह अनुभव करती है कि उसे अकारण ही संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा सुविधाओं जिनका लाभ अन्य नागरिक उठा रहे हैं के उपभोग से वंचित किया जा रहा है। भारत-विरोधी तत्व तथा दल इस स्थिति का लाभ उठाकर काश्मीर की जनसंख्या के एक भाग में विभाजनकारी प्रवृत्ति को पनपाते हैं जो भारत के व्यापक हितों के लिए घातक है।

लद्दाख पर चीन के आक्रमण से, जो सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए सुरक्षा का प्रश्न बन गया है, स्थिति और भी बिगड़ गयी है। केन्द्र को जम्मू-काश्मीर राज्य तथा विशेषतः लद्दाख की परिस्थिति के प्रति पूर्ण सजग रहना चाहिए।

भारतीय जनसंघ मांग करता है कि संविधान के अनुच्छेद ३७० की अविलम्ब समाप्ति तथा संविधान को जम्मू-काश्मीर पर पूर्णतः लागू करने के लिए पग उठाया जाय। साथ ही सीमावर्ती क्षेत्र में यातायात तथा संचार के साधनों को विकसित करने के लिए शीघ्र कार्यवाही की जाय। यह महत्वपूर्ण है कि लद्दाख को एक ओर लाहौल से तथा दूसरी ओर किश्तवार और पडार से जोड़ने का काम हाथ में लिया जाय।

आर्थिक स्थिति

आज जबकि बाहरी आक्रमण का संकट सामने है, देश की आर्थिक स्थिति भी समाधानकारक नहीं है। गत १२ वर्षों में शासन राष्ट्र के आर्थिक विकास पर निरन्तर बल देता रहा है, यहां तक कि उसने सुरक्षात्मक तथा अन्य आवश्यकताओं पर भी ध्यान नहीं दिया, किन्तु शासन द्वारा अपनाई गयी मूलतः अशुद्ध नीतियों के फलस्वरूप अर्थ-व्यवस्था ने गत कुछ वर्षों में इतने दबाव तथा तनाव सहन किये हैं कि सुरक्षात्मक युद्ध का सामना करना तो दूर रहा, वह शान्तिकाल में बढ़ती हुई जनसंख्या को भी नहीं सम्हाल सकती। वर्तमान में अपने ही बल पर निरन्तर

वर्धमान अर्थ-व्यवस्था की बातें करना कोरी आत्म-वंचना है।

यह तो सत्य है कि गत एक वर्ष में औद्योगिक तथा कृषि दोनों ही क्षेत्र का उत्पादन बढ़ा है और एक वर्ष पूर्व की गिरावट की पृष्ठभूमि में इसे प्रगति माना जा सकता है। किन्तु तनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जायगा कि यह वृद्धि अधिकांश में आकस्मिक है तथा अनियोजित एवं असमन्वित स्वरूप की है। जहाँ कुछ उद्योगों की उत्पादन क्षमता का उपयोग नहीं हो रहा वहाँ दूसरी ओर ऐसे उद्योग हैं जिनमें अभाव है। देश के औद्योगिक ढाँचे में छोटे और बड़े उद्योगों के बीच सामञ्जस्य स्थापित नहीं किया गया है जिससे बड़े उद्योगों की थोड़ी सी भी वृद्धि छोटे उद्योगों के लिए कष्ट-कर होती है। अतः नये उद्योगों की स्थापना और पुराने उद्योगों का ह्रास साथ साथ चल रहा है। जितने व्यक्तियों को काम मिलता है उससे अधिक बेकार होते हैं। पुरानी पूंजी की समाप्ति नई पूंजी के निर्माण से अधिक है। संयुक्त उत्पादन कार्यक्रम की चर्चा होने के बाद भी जूट, वनस्पति और चीनी उद्योगों के बीच ताल-मेल नहीं हो पाया है। कभी एक को और कभी दूसरे को सहायता के अब तक सरकार ने जो प्रयत्न किये हैं उनसे उनके बीच मनमुटाव और असन्तुलन की ही वृद्धि हुई है।

सूती वस्त्रोद्योग की स्थिति भी अच्छी नहीं है। गत वर्ष मंदी के कारण कारखाने बन्द हो गये और छटनी हुई, तो इस वर्ष उत्पादन में वृद्धि होने के उपरान्त भी कपड़े के मूल्य बहुत बढ़े हैं और आगे भारी अभाव की आशंका उत्पन्न हो गई है। हाथकरघा उद्योग की भी यही हालत है।

पिछले वर्ष की तुलना में कृषि उत्पादन अच्छा है फिर भी देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बहुत अपर्याप्त है। साथ ही इस वर्ष की अच्छी फसल प्रकृति का प्रसाद है न कि नियोजित प्रयत्नों का परिणाम।

निर्यात में वृद्धि के उपरान्त भी आयात उससे अधिक है और इसलिये व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल है। किन्तु अनेक मित्र देशों से सहायता के कारण हमारा भुगतान सन्तुलन सुधरा है और आज पिछले वर्ष की तुलना में हमारा विदेशी मुद्रा का कोष लगभग २१ करोड़ रुपये से अधिक है। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि हमारे ऊपर तेजी से विदेशी ऋणों का भार बढ़ता जाता है तो वर्तमान की कठिनाइयों को दूर करने का यह रास्ता हमारे लिये भविष्य के लिये आशंकायें पैदा कर देता है।

कीमतें शासन की आर्थिक नीतियों का सब से कमजोर पक्ष रही हैं। शासन उनका स्थिरीकरण नहीं कर पाया है। इस वर्ष थोक मूल्यों के सूचकांक (१९५२-५३=१००) ११०.७ (जनवरी) से बढ़कर ११९.२ (अक्टूबर) तक पहुँच गये हैं। अन्न के दाम तो इतने ऊँचे उठे कि उनका सूचकांक १२४ तक गया।

साधारण परिवारों की कठिनाइयों का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक अक्तूबर १९५९ में १२६ (१९४९=१००) थे। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि श्रम और निश्चित आय वाले अधिक वेतन और भत्तों की मांग करें। शासन ने पहल करके राष्ट्रीय वेतन दरें निश्चित करने के लिये किसी स्थाई निकाय की व्यवस्था करने के स्थान पर केवल वहीं पग उठाये हैं जहां कुछ दबाव पड़ा है अन्यथा उपेक्षा ही की है। यदि हम मूल्य-वृद्धि के मूल में जायेंगे तो पता लगेगा कि उत्पादन की कमी और प्रति वर्ष बढ़ने वाले घाटे की अर्थव्यवस्था से उत्पन्न मुद्रा-स्फीति ही इसका कारण है। शासन की नीतियां, जिनकी जल्दबाजी में घोषणा की जाती है, जो अव्यवहारिक होने के कारण कभी क्रियान्वित नहीं होती है और इत्मीनान से वापस ले ली जाती है, बाजार में अभाव का वातावरण पैदा कर देती हैं। हाल में हुई अनाज के मूल्यों में वृद्धि शासन द्वारा घोषित अनाज के राजकीय व्यापार और अन्न के क्षेत्रों सम्बन्धी अदूरदर्शी नीति के कारण ही है। शासन की मौद्रिक और वित्तीय नीतियां भी इस वृद्धि में सहायक हुई हैं।

बेकारी पूर्वानुसार विकट समस्या बनी हुई है। काम दिलाऊ दफ्तर उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। शासन ने उनका सुधार करने के लिये उनका पुनर्गठन करने के स्थान पर यही कानून बनाया है कि निजी क्षेत्र के लोग भी अपने यहां जगह खाली होने पर इन दफ्तरों को अनिवार्य रूप से सूचित करें। इससे काम दिलाऊ दफ्तरों में कुछ अधिक व्यक्ति भले ही लग जायें पर बेकारी समस्या पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

देश की स्वतंत्रता और शासन द्वारा समाजवाद की स्वीकृति के कारण कर्मचारियों पर आई नई जिम्मेदारियों का योग्यता और ईमानदारी के साथ वे निर्वाह कर सकें इस दृष्टि से सार्वजनिक सेवाओं का पुनर्गठन बाकी है। किन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इस काम में कर्मचारियों में असुरक्षा का भाव न उत्पन्न हो जाए तथा सत्तारूढ़ दल के लोग सरकारी कामों पर न लगाए जायें। नियुक्ति और पद-वृद्धि आदि में जाति और सम्प्रदाय का विचार नहीं होना चाहिये।

भारतीय जनसंघ का मत है कि देश की अर्थ व्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार पर खड़ा करने के लिये और विकास प्रक्रियाओं के वहन के लिये सरकार को अपनी अर्थनीति में आमूल परिवर्तन करना चाहिये। अर्थ-क्षेत्र में राज्य के निरन्तर बढ़ते प्रभुत्व को प्रवृत्त करने वाले मतवादी दृष्टिकोण का परित्याग किया जाए और ऐसे अवसर उत्पन्न किये जायें जिस में व्यक्ति तथा स्वयंस्फूर्त संगठन अर्थ रचना के विकास के लिये अधिकाधिक योगदान कर सकें।

शासन को प्रतिरक्षा व मूलभूत उद्योगों तक ही अपने को सीमित

रखना चाहिये और शेष उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए। आज सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की अपेक्षा उनके वर्तमान स्वरूप को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है जिससे वह अपनी उत्पादन क्षमता और कौशल बढ़ा सके।

छोटे यंत्र चालित उद्योगों को देश के औद्योगिक ढांचे का आधार बनाया जाय। बड़े और छोटे उद्योगों के बीच की प्रतिद्वन्दिता समाप्त करने की दृष्टि से उनके उत्पादन क्षेत्रों का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिये।

कृषि को आवश्यकता दी जाय तथा देश को पंचवर्षीय योजना की अवधि में अन्न की दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने के सब संभव उपाय किये जावें। किसानों में विश्वास पैदा करने के लिये सहकारी खेती के कार्यक्रम के परित्याग की असंदिग्ध शब्दों में घोषणा की जाय। जोत की अधिकतम सीमा और पुनर्वितरण सम्बन्धी अन्य भूमि सुधारों को क्रियान्वित करने में शीघ्रता की जाये। हर गांव में उत्पादन वृद्धि की योजनायें बनाने के लिये कृषि परिषदें स्थापित की जायें।

सैनिक सामग्री प्राप्त करने के लिए प्रतिरक्षा व्यय में बढ़ोतरी आवश्यक है। अन्य कम महत्व की योजनायें अधिक अनुकूल समय के लिए स्थगित रखी जा सकती हैं। प्रशासन में मितव्ययिता से काम लिया जाना चाहिये।

कर-नीति का निर्धारण इस ढंग से किया जाना चाहिये कि जहां उसके द्वारा विषमता घटे वहां उससे जनता की उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव भी न पड़े। प्रतिदिन की आवश्यकताओं पर उत्पादन शुल्क में पर्याप्त कमी की जानी चाहिए।

गल्ले के राजकीय व्यापार की नीति का आश्रय लेकर इस क्षेत्र पर शासन का एकाधिकार निर्माण करना उचित नहीं। किन्तु यह आवश्यक है कि शासन मूल्यों के गिरते समय गल्ला खरीदने की तथा अभाव के समय अभावग्रस्त क्षेत्रों में सस्ते अनाज की दुकानें खोलने की व्यवस्था करे।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

विगत एक वर्ष में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में एक ओर सुधार के तथा दूसरी ओर बिगाड़ के लक्षण दिखे हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति तथा सोवियत प्रधान मन्त्री के बीच व्यक्तिगत भेंट के परिणाम स्वरूप यूरोप में तनाव कम हुआ है तथा शिखर-सम्मेलन के कार्यक्रम निश्चित किये जा रहे हैं। वैसे ही अफरीका में कुछ नये स्वतन्त्र राष्ट्रों का आविर्भाव उस महाद्वीप की जनता की चिर आकांक्षाओं की सफल पूर्ति के रूप में हुआ है। भारतीय जनसंघ इन राष्ट्रों का अभिनन्दन करता है।

किन्तु एशिया की स्थिति सुधरने के स्थान पर और बिगड़ी है। साम्यवादी चीन ने दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की स्वतन्त्रता को चुनौती देकर

संकट पैदा कर दिया है। यह आश्चर्यजनक संयोग है कि जब एक ओर साम्यवादी रूस गैरसाम्यवादी पश्चिमी राष्ट्रों के साथ शान्ति-वार्ता का प्रयत्न करता हुआ अपने दृष्टिकोण में कुछ उदारता का परिचय दे रहा है उस समय अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में अवस्थित कम्युनिस्ट चीन तिब्बत की स्वतन्त्रता और जातीयता का समूलोच्छेदन करने के उपरान्त एशिया के अन्य तटस्थ देशों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही तक कर रहा है। चीन की ये कार्यवाहियां निश्चित ही विश्व-शान्ति के लिए घातक हैं, तथा उस नीति के विरुद्ध पड़ती हैं जिसकी घोषणा आज सोवियत रूस कर रहा है। किन्तु इसे चीन के दिमाग की सनक या मनमानी कह कर नहीं टाला जा सकता। रूस और चीन के बीच नीतियों का मतभेद मान कर इन
नहीं होगा।
आक्रमणों की मीमांसा करना भी ठीक नहीं होगा। कम्युनिस्ट देशों द्वारा बाहर कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा अन्दर से विद्रोह और
कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा अन्दर से विद्रोह और कम्युनिस्ट देशों द्वारा बाहर अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ने
से आक्रमण की जिस नीति और कार्यक्रम का निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ने अपने विस्तार के लिए कर रखा है, चीन उसी का पालन कर रहा है। पश्चिमी मोर्चे पर रूस द्वारा शान्ति का आभास प्रजातन्त्रीय देशों को भुलावे में डालने का प्रयत्न मात्र है। इस परिस्थिति का लाभ चीन साम्यवाद की सीमाओं का एशिया में विस्तार करने के लिए उठा रहा है। रूस ने शान्ति की घोषणाओं के बावजूद चीन द्वारा अशान्ति और युद्ध के प्रयत्नों की कभी आलोचना तक नहीं की। रूस एशिया के राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए चीन पर दबाव डालेगा यह समझना भूल होगी।

भारतीय जनसंघ का निश्चित मत है कि आज की परिस्थिति में विश्व के बड़े राष्ट्रों के बीच शिखर सम्मेलन उनके बीच गलत फहमियों को दूर कर सद्भावना उत्पन्न करने, शीतयुद्ध को बन्द करने तथा प्रत्यक्ष युद्ध को टालने में सहायक हो सकता है किन्तु स्थायी विश्वशान्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक राजनीतिक पराधीनता, आर्थिक शोषण तथा रंग भेद मौजूद है और दुनिया के ये बड़े-बड़े राष्ट्र उनको मिटाने के स्थान पर एक दूसरे के विरुद्ध चुप रहने का ही समझौता कर लेते हैं। पश्चिमी उपनिवेशवाद के अवशेष जब तक कायम है और जब तक अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की आड़ में नये साम्राज्यवाद के चंगुल में फंसे देश अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त नहीं करते, तब तक विश्व शान्ति की बातें करना मानव के एक बहुत बड़े समुदाय को गुलाम बनाये रखने का षडयंत्र मात्र समझा जायगा। शिखर सम्मेलन की सफलता के लिए आवश्यक है कि बड़े राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ को अपने दायित्वों का निर्वाह करने का प्रभावी माध्यम बनाने की व्यवस्था करें, अस्त्र-शस्त्रों के उत्पादन, परीक्षण और प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगावें और निःशस्त्रीकरण की ओर सक्रिय पग उठावें।

भारत अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में दोनों शक्ति गुटों से अलग रहने की नीति अपनाता रहा है। यह नीति विश्वशांति के व्यापक लक्ष्य एवं राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से हमारे लिये उपयुक्त है। अतः जनसंघ ने इसका प्रारम्भ से समर्थन किया है। चीन के आक्रमण के बाद बदली हुई परिस्थितियों में इस नीति को बदलने का विचार देश में जोर पकड़ता जा रहा है। जनसंघ यह मानते हुए भी कि विदेश नीति का निर्धारण कुछ काल्पनिक सिद्धान्तों एवं भविष्य के स्वप्नों के आधार पर न होकर यथार्थ की भूमि पर राष्ट्र के हितों के संरक्षण की दृष्टि से होता है और इसलिये विश्व की बदली हुई स्थिति में उसे बदला जा सकता है, आज की परिस्थिति में देश की भौगोलिक और सामरिक स्थिति, हमारी योजनाओं और आकांक्षाओं, विश्व की शक्तियों के सन्तुलन, अपने शत्रु और मित्र, सब का विचार करते हुए यही हितावह समझता है कि हम अपनी दोनों गुटों से अलग रहने की नीति को बनाये रखें। किन्तु, इस नीति का भली-भांति पालन करने के लिये यह आवश्यक है कि हम दुनिया के झगड़ों से भी दूर रहें तथा ऐसे किसी मामले में न पड़ें जिसका हमारे राष्ट्रीय हितों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो। साथ ही इस नीति में ऐसी कोई बात नहीं जो कि युद्ध की स्थिति में हमें अपने राष्ट्रीय सुरक्षा-सामर्थ्य को बढ़ाने के लिये किसी भी देश से कोई सहायता लेने से रोकती हो।

पाकिस्तान के साथ संयुक्त सुरक्षा संधि के भी प्रस्ताव हुए हैं। जब तक भारत के साथ स्वाभाविक हित सम्बन्धों की अनुभूति के आधार पर पाकिस्तान अपनी भारत विरोधी नीतियों का परित्याग नहीं करता तथा जब तक वह काश्मीर के एक तिहाई भूभाग पर आक्रमणकारी के रूप में स्थित है तब तक इस प्रकार के प्रस्तावों का कोई अर्थ नहीं। यह पाकिस्तान के नापाक इरादों को पूरा करने की वैसी ही चाल हो सकती है जैसी पंचशील की घोषणायें चीन की ओर से रहीं।

भारतीय जनसंघ का मत है कि किसी न किसी के सहारे खड़े होने की मनोवृत्ति मूलतः पिछले बारह वर्षों में भारत के राष्ट्रीय हितों का संरक्षण करने में हमारी विदेश नीति की असफलता तथा देश की असमर्थता की भावना में से उत्पन्न हुई है। राष्ट्रीय हितों के संरक्षण और संवर्धन की असफलता का कारण विदेश नीति का सैद्धान्तिक पहलू न होकर व्यवहार है। हमें अपने उस व्यवहार में परिवर्तन करना होगा तथा अपनी नीति के ऐसे प्रवक्ता नियुक्त करने होंगे जो व्यवहार-कुशल हों तथा हमारी नीतियों का सही प्रतिनिधित्व कर सकें। राष्ट्र के लिये शक्ति की उपासना प्रत्येक परिस्थिति में आवश्यक है, किन्तु उसका साधन पराश्रय नहीं अपितु अपने आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को जगाकर राष्ट्रीय-संगठन के बल से सभी क्षेत्रों में सामर्थ्य उत्पन्न करना है।

चीनी आक्रमण

भारतीय जनसंघ इस बात पर घोर चिन्ता व रोष प्रगट करता है कि भारत की भूमि में चीनी आक्रमण अभी तक कायम है, तथा शासन न केवल आक्रमणकारियों को बाहर खदेड़ने में असफल रहा है बल्कि उसने चीनी संकट के सही स्वरूप का भी भली भांति आकलन नहीं किया।

जनसंघ ने दिसम्बर १९५३ में ही चीन की आक्रामक योजनाओं के विरुद्ध चेतावनी दी थी। किन्तु शासन न केवल असावधान रहा, अपितु अपने कार्य व व्यवहार द्वारा चीन के एक के बाद एक आक्रमण को सहन करता रहा। जब चीन की सेनाएं तिब्बत की पादाक्रान्त कर उसके स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त कर रही थीं, तब भारत एक निष्क्रिय दर्शक बना रहा। १९५४ में भारत ने तिब्बत पर चीन के स्वामित्व को औपचारिक मान्यता दे दी और तिब्बत में अपने सब अधिकारों को चीन के पक्ष में छोड़ दिया। अपने शान्तिप्रिय पड़ोसी, जिसके साथ युगों से हमारे धार्मिक, एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध चले आ रहे हैं, के प्रति विश्वासघात का पाप तो हमने किया ही, पर इस प्रकार राज्य की समाप्ति में सहयोग देकर भारत के हितों के विरुद्ध आत्मघाती कार्य भी किया। चीन द्वारा भारत की भूमि को अपना बताने वाले मानचित्र प्रकाशित करने के बाद में भारत की सीमाओं के अतिक्रमण पर भी भारत सरकार ने जिस चरम निष्क्रियता का परिचय दिया है वह सर्वविदित है। एक ओर चीन के दुष्कृत्यों के सम्बन्ध में संसद व जनता को जानबूझ कर अन्धकार में रख कर, तो दूसरी ओर चीन के स्वर में स्वर मिला कर पंचशील की लोरियां गा कर जनता में एक झूठी सुरक्षा एवं निश्चिन्तता की भावना पैदा कर शासन ने वह भयंकर भूल की है जो किसी दूसरे प्रजातन्त्र देश में उसके पदत्याग का कारण बन सकती थी। संक्षेप में, भारत की चीन सम्बन्धी नीति पूर्णतः असफल सिद्ध हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण वार्ता से हल करने की शासन की उत्सुकता में सहभागी होते हुए भी भारतीय जनसंघ का यह निश्चित मत है कि जहां किसी पड़ोसी की सीमाओं का जानबूझ कर अतिक्रमण हुआ हो और उसकी भूमि पर बलात अधिकार कर रखा गया हो वहां आक्रमण की समाप्ति के पूर्व ही आक्रमणकारी से समझौते के प्रयास आक्रान्ताओं का हौसला ही बढ़ाना है। सत्य यह है कि चीन के साथ लम्बे पत्र-व्यवहार द्वारा अपने पक्ष को प्रमाणित करने में भारत जिस ढंग से चिपटा हुआ है उसके फलस्वरूप चीन की विस्तारवादी क्षुधा में वृद्धि ही हुई है और वह अपने बेहूदा दावों को निरन्तर बढ़ाता जा रहा है; यहां तक कि अपने नये पत्र में उसने सम्पूर्ण उत्तरी सीमा को विवादास्पद बनाने का दुःसाहस किया है। आज जबकि चीन की सेनायें भारत की भूमि पर जमी हुई हैं और उसका रवैया

हठवादिता और खुली अड़ंगेबाजी का है, चीन का यह प्रस्ताव कि दोनों देशों के प्रधान मन्त्रियों के बीच बिना किसी शर्त के वार्ता हो, निःसंशय ही अपमानजनक है। यह उचित ही है कि पं० नेहरू ने प्रधान मन्त्री चाऊ एन लाई के रंगून के निमन्त्रण को तुरन्त ठुकरा दिया। अन्तिम पत्र भी किसी भिन्न उत्तर की अपेक्षा नहीं करता। निश्चय ही भारत इस प्रश्न पर म्यूनिख की पुनरावृत्ति नहीं होने देगा।

किन्तु चीनी मोर्चे पर शासन की असफलता का सबसे चिन्ताकारक पहलू यह है कि वह इस तथ्य को समझने से निरन्तर इन्कार कर रहा है कि भारतीय क्षेत्र में चीन की घुसपैठ, मानचित्रों के सम्बन्ध में किसी भ्रान्ति का परिणाम नहीं और न वह दलाई लामा को भारत में आश्रय देने से उत्पन्न रोष का ही फल है—वस्तुतः चीन का आक्रमण दलाई लामा के आगमन के बहुत पूर्व ही प्रारम्भ हुआ था—बल्कि वह दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व-एशिया के देशों में कम्युनिस्ट विस्तारवाद के एक सुविचारित तथा सुनियोजित कार्यक्रम का ही एक अंग है। इसकी पूर्ति के लिए चीन ने दोहरी योजना अपनाई है। प्रथम, बाहर से आक्रमण और द्वितीय देश के भीतर ही एक पंचम-स्तम्भ का योजनाबद्ध निर्माण। इस संदर्भ में वियतनाम, इण्डोनेशिया तथा लाओस की घटनायें बोधप्रद होंगी। चीन के लिए वार्तालाप तथा पत्र-व्यवहार, समझौते तथा सन्धियां वहीं तक अर्थ रखती हैं जहां तक कि वे उसकी इस योजना में सहायक होती हों अन्यथा जैसा कि उसने अपने नये पत्र में निर्लज्जतापूर्वक प्रकट किया है, वह ऐसी "दासता संधियों" को झुठलाने में तनिक भी नहीं हिचकिचायेगा। चीनी संकट के वास्तविक स्वरूप को समझने में शासन की इस असमर्थता का ही यह फल है कि एक ओर हमारी चीन सम्बन्धी नीति पग-पग पर यथार्थवाद से शून्य रही है और दूसरी ओर उसी आन्तरिक कम्युनिस्ट संकट के प्रति भी सरकार को असावधान बना दिया है।

भारतीय जनसंघ भली-भांति अनुभव करता है कि कम्युनिस्ट चीन की चुनौती का सामना केवल सामरिक स्तर पर और हमारी वीर सेनाओं द्वारा ही नहीं बल्कि राष्ट्रजीवन के सभी क्षेत्रों में काम करने वाले प्रत्येक भारतीय द्वारा किया जाएगा। वर्तमान संकट का यह तकाजा है कि प्रत्येक जन राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अधिकाधिक योगदान देने के लिए कृतसंकल्प हो और राष्ट्र-रक्षार्थ सर्वस्वार्पण के लिये सन्नद्ध रहे।

भारतीय जनसंघ का यह अधिवेशन अपनी इस मांग को दुहराता है कि चीनी आक्रमणकारी को भारत की भूमि से बाहर खदेड़ने के लिये अविलम्ब पग उठाये जावें और भारत-स्थित चीन के कूटनीतिक तथा व्यापारिक अभिकरणों के विरुद्ध जवाबी कार्यवाही की जाए। यह अधिवेशन शासन से आगे मांग करता है कि—

(क) तिब्बत की स्वायत्तता के सम्बन्ध में चीन ने अपने पवित्र आश्वासनों, समझौतों तथा संधियों का जो उल्लंघन किया है उसे देखते हुए भारत शासन को तिब्बत पर चीन के स्वामित्व की मान्यता को रद्द कर देना चाहिये और तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन करना चाहिये।

(ख) भारत के विरुद्ध चीन की शत्रुता को देखते हुए शासन को चीनी गणराज्य को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने के प्रश्न पर अपना समर्थन वापस ले लेना चाहिये।

(ग) भारत में स्थित चीन-समर्थक तत्वों की गतिविधियों पर कठोर दृष्टि रखी जाय और राष्ट्र-विरोधी शरारत करने की उनकी क्षमता को प्रभावपूर्ण रीति से कुंठित किया जाए।

(घ) और इस तथ्य को मान कर कि एशिया में शान्ति को बनाये रखने के लिए भारत तथा चीन के बीच सैनिक संतुलन आवश्यक है, भारत के सुरक्षा-सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए शीघ्र तथा प्रभावी पग उठाये जायें।

भारत-पाक सम्बन्ध (कार्य समिति द्वारा स्वीकृत)

गत कुछ दिनों से वित्तीय समझौता, पंजाब नहरी पानी विवाद, सीमा प्रश्न, व्यापार समझौता आदि प्रश्नों पर भारत-पाक सम्बन्धों को सुधारने का प्रयास हुआ है। यह योग्य है एवं भारतीय जनसंघ इसका स्वागत करता है। किन्तु यह खेद का विषय है कि इन अधिकांश समझौतों में उनकी वास्तविक शर्तों को प्रकाशित नहीं किया जाता और पता लगने पर वे भारत के हितों के प्रतिकूल मिलती हैं। यह चुप-चुप की नीति निन्दनीय है। उदाहरणार्थ पाकिस्तान के लगातार ६ महीने सीमा पर गोलियां चलाने तथा तुकेरग्राम पर बलात् अधिकार करने के बाद जब सितम्बर १९५८ में नेहरू-नून करार हुआ तो भारत की जनता को उसकी शर्तों का पता पाकिस्तान के प्रधान मंत्री, सर फीरोज खाँ नून के द्वारा ही लगा। जनता को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसके अनुसार तुकेरग्राम को वापिस लेना तो दूर, उलटा पश्चिम बंगाल के बैरूबाड़ी, मुर्शिदाबाद जिले का कुछ भाग, २४ परगने में इच्छामती नदी को पाकिस्तान को सौंपने का ही प्रस्ताव किया गया। हाल के पूर्वी सीमा विवाद पर मन्त्रियों के सम्मेलन में हुए समझौते के अनुसार भी तुकेरग्राम (जो कभी पाकिस्तान का नहीं था अपितु १९५८ में पाकिस्तान द्वारा उस पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया गया था) तो अवश्य वापिस मिला, किन्तु आसाम के मूल्यवान पथरिया जंगल की १७ वर्गमील भूमि (जिसमें पथरकुण्डी थाने के ५ आबाद गांव भी सम्मिलित हैं) जो कि रैडक्लिफ पंचाट के अनुसार भारत को मिले थे और विभाजन से बाद

हमारे ही अधिकार में थे) पाकिस्तान को दे दी गयी। पश्चिमी सीमा के सम्मेलन में भी सुलेमानकी हैडवर्क्स (शीर्षक-कर्मान्त) का क्षेत्र तथा अन्य तीन गाँव भी इस प्रकार पाकिस्तान को देने का तय किया गया।

इन समझौतों में अधिकतर मामला लेन देन का न होकर भारत की ओर से देने और पाकिस्तान द्वारा लेने का ही रहा है। यदि आत्मसमर्पण का यही मार्ग स्वीकार करना है तो सद्भावना कभी भी खरीदी जा सकती है। किन्तु इस प्रकार के समझौते राष्ट्रीयहितों के प्रतिकूल हैं। अतः जनसंघ उनका विरोध करता है।

इस के अतिरिक्त पाकिस्तान में हिन्दुओं को कुचलने की नीति अपनाई जा रही है। १९५० के नेहरू-लियाकत अली समझौते की अवहेलना करके पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं की सम्पत्ति को बेचने, रुपया भेजने तथा भारत आने के अधिकार को प्रतिबन्धित ही नहीं बिलकुल समाप्त किया जा रहा है। सच तो यह है कि हिन्दुओं की स्थिति वहां असह्य हो गयी है। भारतीय जनसंघ की मांग है कि पाकिस्तानी हिन्दुओं को सम्मान का जीवन व्यतीत करने का अधिकार, जोकि विभाजन की शर्त थी, दिलाने के लिये भारत शासन प्रभावी पग उठाये।

शिक्षा (कार्य समिति द्वारा स्वीकृत)

हाल की घटनाओं ने जिनके परिणामस्वरूप मैसूर, अलाहाबाद और लखनऊ के विश्वविद्यालयों को बन्द करना पड़ा, एक बार पुनः राष्ट्र का ध्यान उस रोग की ओर केन्द्रित किया है जिससे देश का शिक्षा क्षेत्र ग्रस्त है। इन घटनाओं का दायित्व विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता पर डालना प्रश्न का अत्यधिक सामान्य विवेचन होगा। विद्यार्थियों में बढ़ती हुई अनुशासन हीनता तो रोग का एक लक्षण मात्र है, उसके कारणों का निदान करने के लिए तो हमें समुचित रीति से गहराई में देखना होगा।

कार्य समिति का मत है कि इस बुराई का मूल कारण हमारी शिक्षा पद्धति है जो कि बहुत अधिक पुस्तक प्रधान है तथा जिसमें नैतिक एवं राष्ट्रीय तत्वों का अभाव है। प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की सुविधायें बहुत ही थोड़ी तथा सामान्य जनों की पहुँच के बाहर हैं। फलतः विद्यालयों में ऐसे विद्यार्थियों की भरमार होती जा रही है जो कि अपने भविष्य के सम्बन्ध में अनिश्चित और फलतः वर्तमान के प्रति लापरवाह हैं।

इस मूलतः खतरनाक स्थिति को शासन के विश्वविद्यालयों में, उनकी स्वायत्तता की कीमत पर, बढ़ते हस्तक्षेप ने और भी गम्भीर बना दिया है। ऊपर से लादे गये विश्वविद्यालयों के अनेक कुलपतियों के पास सत्ताधीशों के वरदहस्त के

अतिरिक्त और कोई उस पद की योग्यता नहीं है। शिक्षा क्षेत्र के कई उच्चपदासीन अधिकारियों के विरुद्ध कुकार्य, नियुक्ति और विद्यार्थियों के प्रवेश में पक्षपात, तथा नैतिक भ्रष्टाचार तक के आरोप खुले आम लगाए गए हैं।

कई उपकुलपति अपने कर्मों या अकर्मों को ढकने के लिए साधारण से कारणों पर विश्वविद्यालयों को बन्द करने एवं बदले की भावना से विद्यार्थियों के साथ बर्ताव करने का भी सहारा लेते हैं।

इस रोग का दूसरा कारण अध्यापकों का जो कि अधिकांशतः चरित्र और नेतृत्व के गुणों का बिना विचार किये चुने जाते हैं गिरता हुआ स्तर है। फलतः वे युवक विद्यार्थियों के सम्मुख वह श्रेष्ठ आदर्श नहीं रख सकते जिससे उनके गुणों का पूरा विकास हो सके। विश्वविद्यालय के अत्यन्त गर्हित प्रकार की आन्तरिक राजनीति के चंगुल में फंसने के कारण स्थिति और भी बिगड़ गई है। इस राजनीति का उपयोग कतिपय अध्यापक अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए करते हैं जिससे विद्यार्थियों का स्तर और अनुशासन का भाव और भी गिरता जा रहा है।

ये तथा अन्य कारण सामान्यतः सभी युवकों तथा विशेषतः विद्यार्थियों के नैराश्य एवं असन्तोष के मूल में निहित हैं। कोरे उपदेश तथा विद्यालयों को बन्द करने की धमकियों से इस रोग का निराकरण नहीं हो सकता।

प्रस्तुत परिस्थिति में कार्य समिति का मत है कि :—

१—लखनऊ और अलाहाबाद विश्वविद्यालयों को बन्द करने के लिए विवश करने वाली गम्भीर परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए एक न्यायायिक एवं शैक्षणिक जांच आयोग नियुक्त किया जाय।

२—विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता बनाये रखने तथा उन्हें प्रादेशिक राजनीति के अनुचित प्रभाव से मुक्त रखने के लिए यह प्रावधान किया जाय कि विश्वविद्यालयों तथा अन्य शैक्षणिक संस्थाओं की प्रबन्ध समितियों में प्रमुखतः शिक्षा शास्त्री तथा अध्यापकों के प्रतिनिधि ही रहें। बाहर के व्यक्तियों का जिनकी कोई शैक्षणिक योग्यता या पात्रता नहीं होती, आज का बाहुल्य समाप्त होना चाहिए।

३—शिक्षा को राष्ट्रीय एवं नैतिक स्वरूप प्रदान करने के लिए शिक्षा-क्रम और पाठ्य पुस्तकों का इस प्रकार पुनर्निर्धारण किया जाय कि जिसमें विद्यार्थियों को राष्ट्रीय परम्परा, संस्कृति एवं जीवन मूल्यों का समुचित ज्ञान प्राप्त हो, उनके मन में राष्ट्र के सभी क्षेत्रों के महापुरुषों के प्रति आदर एवं श्रद्धा जागृति हो तथा उनमें राष्ट्र के प्रति भक्ति का भाव पैदा हो सके। ऐसे विद्यालयों को जो इसी उद्देश्य से स्थापित किये जाते हैं, सभी प्रकार से प्रोत्साहन देना चाहिए।

४—प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा, जो कि उच्च शिक्षा का आधार है, की ओर सांस्कृतिक पुनरनिर्माण की दृष्टि से अधिक ध्यान देना चाहिए। प्राथमिक शालाओं के अध्यापक को समाज में सम्मान का स्थान मिलना चाहिए तथा जिन आर्थिक एवं अन्य कठिनाइयों से आज वह ग्रस्त है उन्हें दूर करना चाहिए।

पंजाब की स्थिति (कार्य समिति द्वारा स्वीकृत)

भारतीय जनसंघ का यह सुनिश्चित मत रहा है कि भारत विभाजन के बाद बचे हुए पंजाब का किसी आधार पर दूसरा विभाजन नहीं हो सकता। इसकी भौगोलिक स्थिति, आर्थिक विकास के लिए आवश्यकतायें, सैनिक दृष्टि से छोटा क्षेत्र एवं जनसंख्या, तथा पश्चिमी पंजाब से आये उद्वासितों के पूर्वी पंजाब के अम्बाला विभाग में पुनर्वास के कारण प्रत्येक जिले, नगर और गाँव में हिन्दी और पंजाबी बोलने वालों की मिलावट ने इसका विभाजन सम्पूर्ण देश एवं पंजाब के लिए हानिकर होने के साथ, व्यवहारिक दृष्टि से भी असम्भव बना दिया है। राज्य पुनर्रचना आयोग भी पंजाबी सूबे के नाम पर सिख बहुमत का राज्य बनाने के हामियों के विचार सुनने और भली भांति छान कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा था।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि राज्य पुनर्रचना आयोग के इस स्पष्ट निर्णय के बाद भी, कि पंजाब का भाषा के आधार पर कोई विभाजन संभव नहीं है, शासन ने, भारतीय जनसंघ के विरोध के बावजूद, पंजाब को मनमानी तरीके से भागों में बांटने तथा उन्हें क्षेत्रीय समितियां देकर अकाली दल के सन्तुष्टीकरण का प्रयत्न किया। साम्प्रदायिक एवं पृथकतावादी दुराग्रहियों के इस सन्तुष्टीकरण का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि अकालियों की मांग की भूख और बढ़ गयी।

अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि गुरुद्वारा चुनावों के बाद मास्टर तारासिंह ने फिर से पंजाब का बटवारा कर अपनी कल्पना के सिख राज्य की मांग को दुहराया है। किन्तु यह साफ तौर से समझना चाहिए कि गुरुद्वारा के चुनाव केवल सिखों के, जो कि पंजाब की जनसंख्या का केवल एक तिहाई है, पंथ के प्रश्न को लेकर लड़े गये थे। इन चुनावों का एक ही अर्थ लगाया जा सकता है कि उस सम्प्रदाय में से उन लोगों का, जिन्होंने शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के चुनावों में भाग लिया, बहुमत गुरुद्वारों का प्रबन्ध मास्टर जी और उनके साथियों के हाथों में सौंपना चाहता है। इसका अर्थ पंजाब के विभाजन के लिए किसी भी प्रकार का समर्थन लगाना गलत होगा। यह प्रश्न राजनीतिक है और उसका सम्बन्ध पंजाब की सम्पूर्ण जनता से है। पंजाब की जनता का भारी बहुमत जिसमें बहुत बड़ी तादाद में सिख भी सम्मिलित हैं, इस साम्प्रदायिक एवं पृथकतावादी मांग के विरुद्ध है।

इस मांग की वर्तमान बम्बई राज्य के महाराष्ट्र और गुजरात की दो स्वयंपूर्ण भाषिक क्षेत्रों में विभाजन से कोई तुलना नहीं की जा सकती। फिर जनसंघ अथवा शासन ने भी कभी भाषा को राज्य रचना का एक मात्र आधार नहीं माना है। इसके अतिरिक्त पंजाबी सूबे की मांग का पंजाबी भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः कार्य समिति मास्टर तारासिंह से अपेक्षा करती है कि वे गुरुओं की परम्परा के अनुसार पंजाब की एकता को बनाये रखने का ही काम करेंगे न कि इसे बांटने का। समिति केन्द्र सरकार से भी अनुरोध करती है कि वह इस विषय में दृढ़ता से काम ले तथा किसी भी प्रकार के विछिन्नकारी एवं राष्ट्र विरोधी मन्सूबों को पूरा करने के लिए अपनाई गयी दबाव की चालों के सामने न झुके। पंजाब के सभी राष्ट्रवादी तत्वों से तथा विशेषकर जनसंघ की शाखाओं से कथन है कि वे इस खतरनाक भरी मांग के विरुद्ध जन जागरण के लिए सभी कदम उठायें।